विज्ञान, वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक मानसिकता

हृदय कान्त दीवान

हृदय कान्त दीवान का यह वक्तव्य, पाठशाला के 13वें अंक में प्रकाशित गौहर रज़ाजी के वक्तव्य के क्रम में है। वे गौहरजी द्वारा कही गईं कुछ मुख्य बातों को रेखांकित करते हैं और उनके निहितार्थ रखते हैं। इस वक्तव्य में, वे बेहतर विज्ञान शिक्षण को कैसे समझे और बेहतर विज्ञान शिक्षण में एक शिक्षक की क्या भूमिका होती है या क्या होनी चाहिए, इसपर अपने विचार रखते हैं। सं.

मैं यहाँ मूलतः, गौहर (गौहरजी के लेख के लिए देखें *पाठशाला* का अंक 13) ने जो कहा, उसमें से दो-चार बातें दोहराना चाहता हूँ। मुझे लगता है उनकी कही ये बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। पहली यह कि सवाल पूछना और नए सवालों को बनाना व बनाए गए नए सवालों को महत्त्वपूर्ण मानना ज़रूरी है। कहने में यह बहुत आसान लगता है, परन्तु विज्ञान की कक्षा और ज़िन्दगी की कक्षा में ये कर पाना बहुत मुश्किल है, और किसी भी व्यवस्था में, स्थिति में कर पाना मुश्किल है। जैसे– घर में, ख़ासतौर पर जब कोई मेहमान आया हो, अगर एक बच्ची ये सवाल पूछे कि चाय मैं ही क्यों बनाती हूँ? यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है और उसका जवाब देना भी मुश्किल है।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में 'सवालीराम' नाम का एक पात्र गढ़ा गया था। बच्चे उसको चिट्ठी लिखते थे और जो भी सवाल उनके दिमाग़ में आता था पूछते थे। यह सवाल कक्षा में पढ़ाए जा रहे विभिन्न विषयों से हो सकता था या किसी और अनुभव से भी। एक बार, एक बच्चे ने पूछा था, "जब हम ककड़ी खाते हैं तो उसके पहले, उसके ऊपर के सिरे को काटकर ककड़ी पर रगड़ते क्यों हैं? कहते हैं कि रगड़ने से उसकी कड़वाहट निकल जाती है। क्या ऐसा होता है?" हमने बहुत-से जीव वैज्ञानिकों और पौध शास्त्रियों से यह सवाल पूछा तो उनको कुछ समझ में नहीं आया। एक अन्य सवाल, यह भी एक बच्चे ने ही पूछा, "बूढ़े लोगों को खाना खाते वक़्त पसीना क्यों आता है?" अब इस सवाल का आप कैसे जवाब देंगे? एक और सवाल एक बच्ची ने पूछा, "जब महिलाओं की शादी हो जाती है तो उनके माँग में सिन्दूर लगा देते हैं, बिन्दी लगा देते हैं, पर पुरुषों की शादी हो गई है यह कैसे पता लगे?" इस सवाल में एक सामाजिक प्रक्रिया पर चिन्ता रखी गई है। यह सवाल सामाजिक विसंगत विचारों से जुड़ा है और इसीलिए बहुत मुश्किल भी है।

अकसर, यह आसानी से कह दिया जाता है कि वैज्ञानिक मानसिकता या वैज्ञानिक सोच कक्षा के बाहर जानी चाहिए। पर हम देख सकते हैं कि यह कर पाना आसान नहीं है व इसके शायद कई निहितार्थ हैं। इसलिए जब कोई कहता है कि आज़ाद इंसान वो है जो सवाल पूछ सकता है, तो कई बार सवाल ऐसे होते हैं कि वे पूरी सामाजिक संरचना या जो व्यवस्था है, उसके प्रति बहुत गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हैं। और इससे हमारे लिए यह सवाल उभरता है कि ऐसे सवालों से कक्षाओं में, परिवारों में,

समाज में कैसे जूझें और उनके हल ढूँढ़ने की कोशिश करें। परेशानी यह है कि ऐसे सवालों को पूछना और उन पर सोचने और चर्चा करने का तरीक़ा हमारे आज के समाज में, दुनिया में और संकीर्ण होता जा रहा है। इसपर सोचने की ज़रूरत है कि हम इस बात को कैसे समझने व मानने लगें कि किसी दूसरे व्यक्ति के देखने का नज़रिया हम से फ़र्क़ हो सकता है? और बात देखने के नज़रिए की है, दोनों ही व्यक्तियों के नज़रिये विचार करने योग्य हो सकते है।

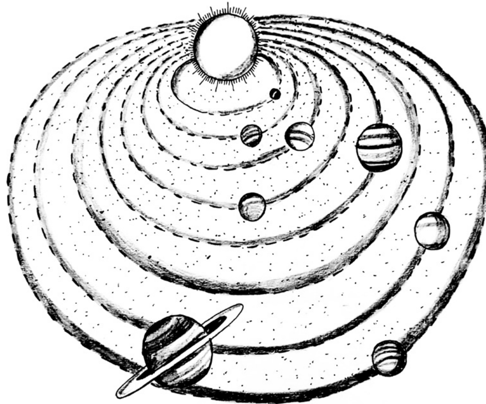
जैसा कि ऊपर कुछ उदाहरण दिए, पूछे जाने वाले सवाल कई तरह के हो सकते हैं। परिवार में, कक्षा में, हर विषय में, ऐसे सवाल होते हैं जिनका जवाब देना आसान नहीं होता। यह भी कि कई वयस्कों की तरह ही कई वैज्ञानिकों व शिक्षकों के लिए भी यह मानना बहुत मुश्किल है कि उनको कोई चीज़ नहीं आती। और ये मान पाना कि दूसरे व्यक्ति जो कह रहे हैं, जो तथ्य अथवा तर्क रख रहे हैं, उनपर हमारी अभी की समझ की थ्योरी फ़िट नहीं बैठती। कई बार चलते-चलते आसानी से कह दिया जाता है कि अगर कोई यह बता दे कि आइन्स्टाइन की थ्योरी $E = mc^2 + X$ है यानी उसमें कोई कमी बता दे, तो उसको नोबल प्राइज़ मिल जाएगा। लेकिन, नोबल प्राइज़ मिलने से पहले बहुत मशक़्क़त होती है। आइन्स्टाइन को जो समझते हैं, जो उनके काम का आदर करने वाले हैं, विज्ञान जानने वाले हैं, वो सब इस समीकरण पर ख़ूब सारे सवाल पूछते, पर्चे भेजते और इस कथन को हर तरह से जाँचा जाता, परखा जाता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान में दूसरे के मत के प्रति आदर रहता है। नए मत को ईमानदारी से सुनना और उसका आदर करना बहुत ज़रूरी है। ऐसा नहीं है कि इस तरह का खुलापन पहले धर्म के दर्शन में नहीं था। इंसान के उद्गम, जीवन लक्ष्य व नैतिक व्यवहार पर भी एक समय पर्याप्त चर्चा होती थी और मतों पर वाद-विवाद भी। मुझे लगता है, ये बात जहाँ विज्ञान के लिए सही है वहीं सोचने के अन्य नज़रियों के सन्दर्भ में इस पर विचार ज़रूरी है। हम एक ऐसे देश में रहते हैं, जिस देश में सवालों पर शास्त्रार्थ होते थे व बहसें होती थीं। एक समय में कई तरह के मत, एक साथ हमारे बीच रहते थे और इन प्रश्नों पर भी लोग लगातार सोचते थे। आपको नचिकेता की कहानी याद होगी। हमें समझना ज़रूरी है कि ये जो ज्ञान को बन्द करने का आतंक है, ये किसी भी क्षेत्र में उचित नहीं है, चाहे वो इस तरह से सोचने के बारे में हो कि सृष्टि की रचना कैसे हुई? या सृष्टि की रचना क्यों हुई?


चित्र : प्रशांत सोनी

ये सवाल विज्ञान के दायरे में, धर्म और दर्शन के दायरे में भी हमेशा खुले ही रहने चाहिए। सृष्टि की रचना कैसे हुई और क्यों हुई, इन दोनों सवालों के दायरे अलग हैं। लेकिन दोनों सवालों के बारे में सोचना ज़रूरी है। जैसे– मुझे अभी भी यह सवाल पूछना महत्त्वपूर्ण लगता है कि अगर भगवान ने दुनिया की रचना की तो इतनी ख़राब क्यों की? क्या वो इतना ख़राब कलाकार है? क्या वे अच्छाई से दुनिया नहीं बना सकते थे जिसमें सभी लोग ख़ुश रहें, जिसमें सुन्दरता हो, सब लोगों को बराबरी का एहसास हो। क्या ज़रूरत है ऐसी दुनिया बनाने की, जिसमें इतना दुख है, पीड़ा है, तनाव है, मार-काट है। ये सवाल मैं लगातार

अपने-आप से पूछता हूँ, और मुझे लगता है इस सवाल पर बातचीत होनी चाहिए। ये नहीं कह सकते कि आप क्यों यह सवाल पूछते हैं। आप ये भी नहीं कह सकते कि घर में जब बाहर से कोई आएगा तो लड़कियाँ ही चाय बनाएँगी। और इसपर सवाल नहीं उठाया जाना चाहिए क्योंकि ये हमारी संस्कृति का हिस्सा है। यह भी नहीं कि यह ही उचित है क्योंकि हमारे देश में ये अच्छी बात मानी जाती है। कई संस्कृतियाँ हैं, लगभग हर जगह ऐसी संस्कृतियाँ हैं जिनमें यह बात सही नहीं मानी जाती है। मुझे लगता है कि कहीं-न-कहीं हमें इस चीज़ पर बात करनी ही पड़ेगी कि हम जिसको कहते हैं कि हमारा ट्रेडिशन है, हमारे संस्कार हैं, वो संस्कार क्या सचमुच में हमारे हैं या थे? उनके हमारे होने का अर्थ क्या है? या हमें कुछ दिया जा रहा है और बताया जा रहा है कि हमारे संस्कार हैं, किसी छोटे प्रभुत्व वाले तबक़े के थोपे हुए विचार हैं जो हमें और समाज को जड़ कर देना चाहते हैं। जो वास्तव में हमारे सबके, सामान्य इंसानों के संस्कार हैं ही नहीं? इसलिए बहुत ज़रूरी है कि हम विनम्र भी बनें और साहसी भी। सवाल भी खुलकर पूछें और दूसरे के मत भी ध्यान से सुनें। अगर आप विज्ञान के बारे में और ज़िन्दगी के बारे में सोचेंगे तो दो चीज़ें ज़रूरी हैं– सवाल पूछने का साहस करना और दूसरे की बात सुनने की विनम्रता होना। उसी से आप अपने बारे में कह सकेंगे कि आप मज़बूत हैं। मज़बूत होने के लिए संसाधनात्मक अथवा शारीरिक शक्तिशालिता की जगह आज़ाद सोच व निर्भीकता ज़रूरी है। इसीलिए हमें दुआ करनी चाहिए कि हम कह पाएँ, हम हैं आज़ाद। आप तभी अपने-आप को आज़ाद महसूस कर सकते हो जब आप अपने-आप को नया सीखने के लिए तैयार कर सकते हों, अपने-आप में यह शक्ति महसूस कर सकते हों कि मैं जो जानता हूँ वो जानता हूँ और जो नहीं जानता वो नहीं जानता। पर उसे चाहूँ तो सीख सकता हूँ।

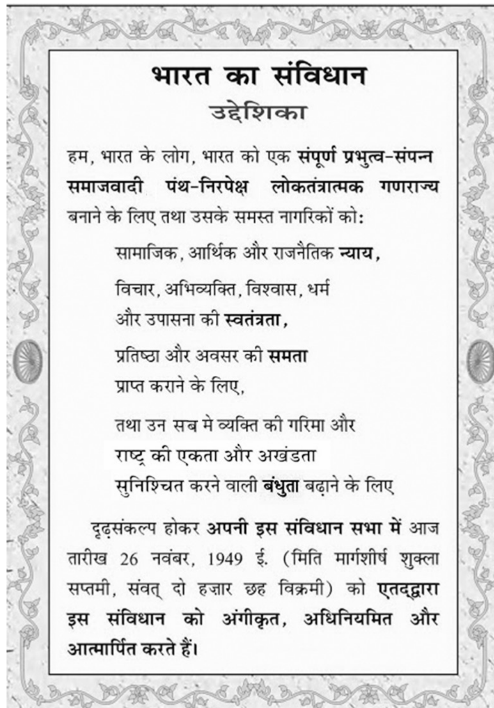
मुझे लगता है कि ये दो बातें गौहर की बातों से निकलकर आती हैं, ज़रूरी हैं। पहली, हमें सवाल पूछना बन्द नहीं करना चाहिए, और हमें सवाल पूछने का दायरा लगातार बढ़ने देना चाहिए। इस बात से डरना नहीं चाहिए कि हमें जवाब नहीं आता, क्योंकि जवाब तो असल में हमें किसी चीज़ का भी नहीं आता।


चित्र : हीरा धुर्वे

आप मानेंगे कि सौ साल पहले जो लोग दावे से कहते थे कि पृथ्वी ऐसी है, और ब्रह्माण्ड ऐसे बना। आज एक पूरी नई कल्पना हमारे सामने है। इस पूरी कल्पना का कुछ हिस्सा हमारे मन में अब हमेशा बना ही रहेगा। मसलन, इंसान पूरे ब्रह्माण्ड में कितनी छोटी-सी हस्ती है, फिर भी वो अपने-आप को कितना बड़ा मानता है। ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ, जीवन की शुरुआत कैसे हुई, क्या पृथ्वी के बाहर भी जीवन है, जैसे बहुत-से सवाल हैं। इनके कुछ जवाब हैं और इन जवाबों की कुछ बातें तो नहीं जाएँगी पर इन सबपर विवाद हो सकता है। हम विज्ञान में आज जो मानते हैं उसपर भी विवाद है। जो बातें गौहर ने बताईं, जैसे कि, एक प्रकार के पौधे व प्राणी जीवन के पृथ्वी पर बनने में, अमुक हज़ार साल लगे, उसमें यह बदल सकता है कि किसी परिवर्तन में 370 हज़ार साल लगे या फिर 375

हज़ार साल। यह बहस जारी है कि भौतिक जगत में जो फ़ोर्सेस हैं, वे चार अलग-अलग प्रकार की बुनियादी फ़ोर्सेस हैं या फिर असल में सभी एक ही फ़ोर्स के रूप हैं। अभी भी इस बात पर बहुत बहस है कि जिन चार अलग-अलग फ़ोर्सेस की बात बार-बार करते हैं वो चार फ़ोर्सेस नहीं हैं, वो असल में एक ही फ़ोर्स है। बहुत लोग इसपर भी शोध कर रहे हैं। और हो सकता है, सौ साल बाद अगर ये जिरह फिर हो और गौहर की बजाय कोई और यह बताए कि फ़ोर्स तो एक ही है, या कुछ और नया बताए तो वो एक नई कल्पना आपके सामने रखेगा। मुझे लगता है कि ये जो बात है कि ज्ञान बदलता है, ज्ञान आगे बढ़ता है, इंसान के बढ़ने के साथ बदलता है, इस बात को हमें नहीं भूलना चाहिए। आगे का भविष्य इस बात से तय होगा कि हम सब कितने नए ढंग से, कितनी स्वतंत्रता से सवाल पूछकर नए जवाब ढूँढ़ने के लिए आगे बढ़ सकते हैं।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ, उसका ज़िक्र भी पहले हुआ है, वह यह कि जब हमने अपना संविधान बनाया था, हमने कहा था कि इस संविधान को हम अपने-आप को समर्पित करते हैं। यह याद करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम देश के लिए नहीं हैं; देश हमारे लिए है; हम ही देश हैं। हमारे बाद, हमारे से पहले देश नहीं है। हमारे बिना भी देश नहीं है। हम, यानी इस देश में रहने वाले, यानी इस देश के नागरिक। हमको देश के लिए बलिदान देना है। इसका मतलब है हमें, हमारे लिए ही बलिदान देना है, हमारे साथियों के लिए बलिदान देना है क्योंकि देश हम ही हैं। बाउंड्री अगर बदल जाती है तो हम नहीं बदलते। मान लीजिए, ग्लोबल वार्मिंग से कुछ हिस्सा पानी में डूब जाता है, तो भारत की सीमा थोड़ी-सी सीमित या संकुचित हो जाएगी, लेकिन हम लोग, जो भारत में हैं, संकुचित नहीं होंगे। मुझे लगता है, यह समझना बहुत ज़रूरी है कि हम ही देश हैं, और इसमें हमारे आसपास जो लोग हैं वही हमारे देशवासी हैं। उनका भला और हमारा भला देश का भला है। देश का भला कुछ ऐसी अमूर्त चीज़ नहीं है, जिसके बारे में अमूर्तता से हमें सोचना है। ऐसा नहीं है कि अमूर्तता से सोचकर हम यह मानें कि देश हमसे अलग है, और देश का भला इसी में है कि हम सब लोग कम खाएँ, बन्द व छोटे कमरों में रहें और देश की पूँजी बढ़ती रहे एवं कुछेक लोगों के पास व उनके एवं सत्ता के उपयोग के लिए केन्द्रित होती रहे। देश का भला हमारे भले से है। जो सामूहिक भला है हमारा, वही देश का भला है, इस चीज़ के बारे में भी हमें सोचना चाहिए।



भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

ये सवाल हमें पूछना चाहिए कि हमने संविधान में किन-किन के बारे में सोचा था? हमने क्या-क्या वायदे एक दूसरे से किए थे? क्या हम उन वायदों को पूरा कर पाए? और उन वायदों को पूरा करने में हमारी क्या ज़िम्मेदारी है? यह भी, क्यों ये वायदे किए थे कि हम लोग एक दूसरे को इज़्ज़त देंगे और क्यों ये वायदे

किए थे कि हम लोग आज़ाद बनेंगे? जिस सेन्स में गौहर ने कहा कि हम आज़ाद बनेंगे, उस सेन्स में, एक लोकतांत्रिक देश में नागरिकों का आज़ाद होना क्यों ज़रूरी है? उस आज़ादी का अर्थ क्या है? आज़ादी इस सेन्स में कि हम स्वतंत्रता से सवाल पूछ सकें, हिम्मत से अपनी बात कह सकें। हम यह बात मान सकें कि हम जो बात कह रहे हैं वो शायद सही नहीं है, और हम नया सीखने के लिए शिक्षक के रूप में, व्याख्याता, बच्चे के रूप में, नई बात सीखने के लिए भी तैयार हों। ये चार-पाँच बातें बहुत ज़रूरी हैं हमारे लिए।

अब मैं तीन-चार सवाल आपके सामने रखता हूँ जिनमें ये बात है कि सुनी-सुनाई बात पर संशय करना आवश्यक है। जब हम होशंगाबाद गए, 1970 की बात है, उस समय वहाँ पर यह मान्यता थी कि मेंढक पहली बारिश के साथ आसमान से गिरते हैं। लोगों की यह भी मान्यता थी कि मोरनी, मोर के आँसू पीकर गर्भवती हो जाती है। इस मान्यता को ग़लत साबित करना सामान्य सन्दर्भों में बहुत मुश्किल था, लेकिन मेंढक का आसमान से गिरना, बात लोग धीरे-धीरे भूल गए। लेकिन जैसा मैंने कहा, कुछ बातें ज़्यादा मुश्किल हैं। मुझे नहीं पता कि आप लोग कितना मानते हैं कि सिर अगर गन्दा हो तो उसमें जूँ पैदा हो जाती हैं। यहाँ लोगों के चेहरों को देखकर लगता है कि शायद बहुत-से मानते हैं, कुछ मना कर रहे हैं, कुछ संशय में हैं कि अगर मैं पूछ रहा हूँ तो यह बात ग़लत ही होगी। ये बड़ी दुविधा है कि हमें न तो सही पता है न ग़लत, लेकिन फिर भी हम ऐसी बहुत-सी बातों को मानते हैं। उन्हें जाँचने के बारे में सोचते भी नहीं।



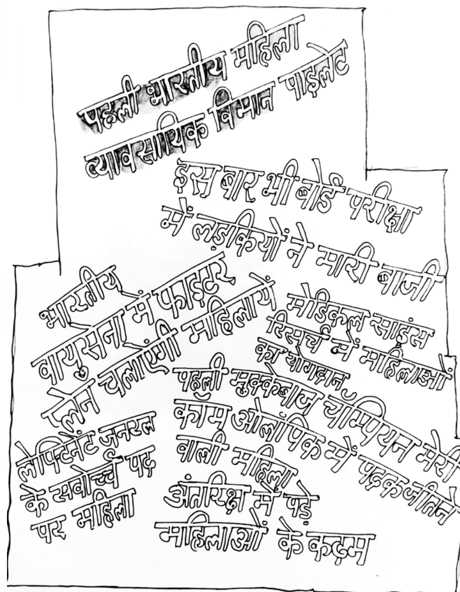
चित्र : हीरा धुर्वे

असली बात यह है कि जूँ साफ़ सिर में भी हो सकती है और गन्दे सिर में भी, क्योंकि ये अण्डे से आती है। यदि आपके सिर में अण्डे आ गए हैं, किसी व्यक्ति के साथ या किसी कपड़े से आ गए तो आपके सिर में अच्छे-ख़ासे शैम्पू के बावजूद जूँ आ जाएगी। लेकिन सफ़ाई व ग़रीब और अलग ढंग से जीने वाले लोगों को दूर रख पाएँ इस कारण से यह धारणाएँ हटाना मुश्किल है। इसीलिए मैं ये कह रहा हूँ कि सुनी-सुनाई बात पर संशय करें और उसको जाँचें। हमारे सामाजिक ढाँचे में यह आम विचार है कि लड़कियाँ गणित और विज्ञान नहीं सीख सकतीं। ये भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में है। अच्छे-ख़ासे बड़े-बड़े अध्येता समूहों ने, वैज्ञानिकों की सोसाइटियों ने वैज्ञानिक महिलाओं को जगह नहीं दी। मैडम क्युरी का पूरा काम उनके पति के नाम से छापा गया। ये मान्यता ही नहीं थी कि महिलाएँ विज्ञान कर सकती हैं।

अभी भी, अगर आप किसी इंटरव्यू में चली जाएँ तो यह यक़ीन नहीं कि इस बात का असर आपके बर्ताव पर नहीं पड़ेगा। यदि आप महिला हैं तो मुझे मालूम नहीं कि आप किसी वैज्ञानिक शाला, यथा आईआईएसईआर या किसी बड़ी आईआईटी में चली जाएँ तो आपके काम को बराबर की जगह मिलेगी। महिलाओं की विज्ञान में बराबरी के इस मसले पर अभी भी बहुत शोध हो रहे हैं, लेकिन अभी तक के शोध यही दिखाते हैं कि अभी भी बहुत सम्भावनाएँ हैं कि यही माना जाएगा कि यह काम महिला तो नहीं कर पाएगी। महिलाओं के प्रति इस रवैए का कोई आधार नहीं है। इसके सही होने का कोई प्रमाण नहीं है, पर इस प्रश्न को जाँचने को भी

कोई तैयार नहीं है। सभी प्रमाण इसके ख़िलाफ़ ही जाते हैं।

दसवीं की परीक्षा ले लीजिए या फिर बोर्ड की बारहवीं की परीक्षा या कॉलेज की परीक्षाएँ ले लीजिए; लड़कियाँ ही अव्वल आ रही हैं। हमारे बीएससी के बैच में लड़की ने ही टॉप किया था। हमें कोई शर्म नहीं आई थी क्योंकि हम जानते थे कि वो हमसे ज़्यादा होशियार है। लेकिन अगर उसको किसी वैज्ञानिक वेधशाला में अपॉइंटमेंट के लिए या किसी कॉलेज में व्याख्याता के लिए भी जाना होता तो मुझे लगता है मेरा चांस उससे बेहतर होता, क्योंकि ये माना जाता है कि लड़कियाँ विज्ञान नहीं कर सकतीं। ये सारे तथ्य हैं जिनपर हमें सवाल पूछने की ज़रूरत है। क्यों ऐसे बहुत-से तथ्य हम मानते हैं?



चित्र : हीरा धुर्वे

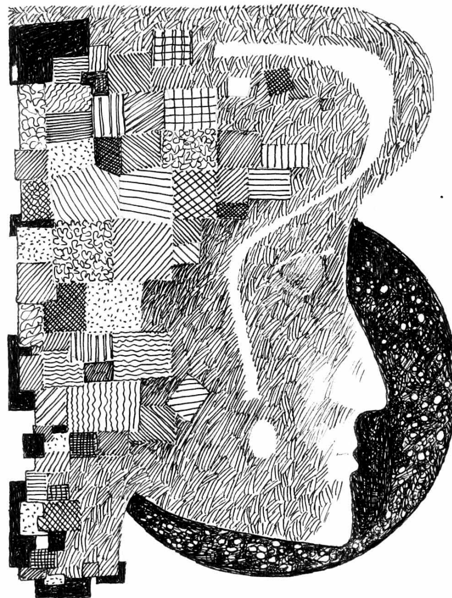
एक ज़माने में ये भी माना जाता था, मुझे मालूम नहीं है कि आप लोग इसे अब मानते हैं या नहीं, कि गोरे लोग ज़्यादा सुन्दर होते हैं। बहुत-से लोग यही मानते रहे हैं। इसीलिए बेचारे कृष्णजी को काला बनाना पड़ा। बहुत सारे गाने भी ऐसे हैं कि काले भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह भी मान्यता रही है कि गोरी चमड़ी वाले दिमाग़ से ज़्यादा तेज़ होते हैं। बहुत शोध किया ये दिखाने के लिए कि उनके दिमाग़ का साइज बड़ा होता है। दुर्भाग्य से निष्कर्ष यह नहीं निकला। कालों का दिमाग़ और सिर का साइज बड़ा निकल आया। फिर उन्होंने कहा, नहीं, ये कुछ और है। वज़न नापना पड़ेगा। उन्होंने अटकलें लगाकर कई तरीक़े से यह किया किन्तु सब असफल रहा। ये स्टीफ़न गोल्ड अपनी किताबों में कई बार लिखते हैं। एक का नाम है, *द मिस मेज़र ऑफ़ मैन* और अगर इस किताब को पढ़ें (स्टीफ़न गोल्ड की किताब) जो आईक्यू के बारे में है, तो आप ये जान जाएँगे कि रंग से बुद्धिमत्ता का आकलन नहीं होता। फिर भी हमारे बीच में आईक्यू टेस्ट है, आईक्यू की जाँच है और आईक्यू के आधार पर निर्णय लेते हैं। मुझे लगता है वैज्ञानिक और वैज्ञानिक सोच के ऊपर छोटी-छोटी चीज़ों में हम सबको लगातार सवाल पूछने की ज़रूरत है।

अभी छत्तीसगढ़ का रिजल्ट आया है। अब वैसा रिजल्ट आना तय ही था क्योंकि जिस तरह से परीक्षा ले रहे हैं, जिन बच्चों की परीक्षा ले रहे हैं, उस परीक्षा में उस परिस्थिति का कोई सवाल ही नहीं है जिसमें वह जी रहे हैं। यह परीक्षा राष्ट्रीय स्तर की है। राज्य के स्तर पर राज्य के अनुकूल परचा बने और राज्य के अनुकूल जाँचना हो और राज्य की परिस्थिति के हिसाब से सोचने दीजिए। असल में तो यह स्कूल के स्तर पर, उसकी परिस्थिति के अनुसार ही होना चाहिए। ग़ैर-बराबरी वाले व अलग-अलग पृष्ठभूमियों वाले बच्चों का एक ही तरह का आकलन तुल्य नहीं है। लेकिन यह टेस्ट होंगे, हो रहे हैं, क्योंकि पूरी दुनिया में बताना है कि भारत का क्या स्थान है? अरे, भारत कोई एक है क्या? कोई भी देश क्या एक पैमाने से मापा जा सकता है?

दिल्ली के संस्कृति विद्यालय में, जिसमें विशेष तरह के बच्चे हैं, जो विशेष पृष्ठभूमियों

से आ रहे हैं, वैसे ही बच्चे पढ़ रहे हैं। इसके विपरीत, होशंगाबाद के दुर्गम गाँव के एक स्कूल में बिलकुल अलग विशेषता लिए बच्चे आते हैं। इनकी एक ही तरह से जाँच कैसे होगी? मुझे लगता है कि इसमें जो ग़ैर-वैज्ञानिकता है वो हमारे जीवन के हर हिस्से में है। इसको विज्ञान की क्लास से बाहर निकालना तो अपेक्षाकृत बहुत सरल है, किन्तु जीवन से नहीं (हालाँकि जिन लोगों ने इसे विज्ञान की कक्षाओं से निकालने का प्रयास किया है, वे कहेंगे कि वह काम बहुत कठिन व जटिल है, किन्तु सामान्य जीवन में व्याप्त ग़ैर-वैज्ञानिकता से फिर भी बहुत सरल है), और मैं सिर्फ़ आपसे यह आग्रह करूँगा कि थोड़ा इस बारे में सोचिए।

आजकल व्हाट्सएप में भी बहुत सारे 'फैक्ट्स' आते रहते हैं। उस हर फैक्ट को पकड़ने का सोचना चाहिए। आप विवेकानन्द के बारे में कई कहानियाँ बना सकते हैं, नेहरू के बारे में बना सकते हैं, दयानन्द सरस्वती के बारे में भी कहानियाँ बना सकते हैं, किन्तु उनसे उन्होंने जो कहा और जो किया, उसका महत्त्व कभी कम नहीं होगा। और उनसे जो हम सीख सकते हैं वो कम नहीं होगा। आजकल सूचनाओं का अम्बार-सा है, लेकिन क्या ये तथ्य और सूचनाएँ सत्य हैं, नहीं हैं, सत्य हैं तो किस हद तक, उसके प्रति सचेत रहने की ज़रूरत है। इसके बारे में व हर चीज़ के बारे में हमें सोचने की ज़रूरत है। मसलन, कल ही एक मैसेज मैंने पढ़ा कि एक जामुन की डण्डी अगर आप पानी की टंकी में डाल देंगे तो आपको पानी साफ़ करने की ज़रूरत नहीं। कृपया इस तरह के सन्देशों को सही मानकर इनका इस्तेमाल मत करना। यह सब कहने वाले वैज्ञानिक और इनको बग़ैर सोचे, बग़ैर जाँचे भेजने वाले बिलकुल ग़ैर ज़िम्मेदार हैं। इसी तरह के कथन वैक्सीनेशन के बारे में भी हैं और स्वास्थ्य सम्बन्धी पहलुओं के बारे में भी। आजकल फॉरवर्ड होने से बहुत आसान हो गया है। कुछ भी फॉरवर्ड कर देने का विकल्प होता है। आप पढ़ो भी नहीं तो भी फॉरवर्ड तो कर ही दो। अब कम-से-कम फॉरवर्ड की संख्या तो कम कर दी है, पहले तो असंख्य फॉरवर्ड होते थे। मुझे लगता है कि ये जो चीज़ें हैं जो भी कोई कुछ कह रहा है उसके ऊपर आपको सोचने की ज़रूरत है।



चित्र : प्रशांत सोनी

हम लोग होशंगाबाद में इस बात पर बहुत लोगों से बहस करते थे। उनके मन में यह सवाल डालने का प्रयास करते थे कि क्या पीपल के पेड़ के नीचे भूत रहते हैं, या फिर पेड़-पौधे रात को सिर्फ़ कार्बन डाईआक्साइड छोड़ते हैं, और जो हमें डराता है वह भूत नहीं भौतिक चीज़ें ही हैं। फिर यह सवाल कि क्या पेड़-पौधे दिन में सिर्फ़ ऑक्सीजन छोड़ते हैं? वैज्ञानिक तौर पर हम यह जानते हैं कि श्वसन निरन्तर प्रक्रिया है, अतः पौधे दिन में कार्बन डाईआक्साइड छोड़ेंगे भी। अब हर चीज़ की जाँच करने के तरीक़े हम सोच सकते हैं, लेकिन उसके लिए ऐसी प्रवृत्ति चाहिए जो हमें सवाल पूछने और ये मानने को तैयार करे कि दिए गए कथनों पर, तथ्यों पर सवाल करना चाहिए। साथ ही

उन सवालों पर विचार करना चाहिए और फिर ये हिम्मत हो कि जाँचने के तरीक़े सोचें और जाँचने के लिए काम करें। और ये हममें से हर कोई कर सकता है।

मुझे सिर्फ़ ये कहना है कि (जो यहाँ पर बैठे हैं) हाई स्कूल के छात्रों के दिमाग़ में भी बहुत सारे सवाल होंगे और होते ही हैं, उनको दबाइए मत। ये मत समझिए कि चूँकि उनका जवाब हमारी पीढ़ी के पास नहीं था इसलिए वो सवाल महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वो सभी सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनको आपको लगातार पूछना है और ये सोचना है कि उनके जवाब आप कैसे ढूँढ़ेंगे। तभी आप एक बेहतर भारत, एक बेहतर भविष्य की तरफ़ बढ़ सकते हैं। आपको नए सवाल और नए जवाब ढूँढ़ने होंगे। जो यहाँ बैठे हैं उनसे, ख़ासकर आप सब युवा विद्यार्थियों से, युवा शिक्षकों से, गौहर ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है। उन्होंने कहा कि ये जाँच-परख करने की, और आगे किधर जाना है इसकी ज़िम्मेदारी आप, हमपर नहीं छोड़ सकते। आगे का रास्ता आपको तय करना है। उसमें विज्ञान, सोच का तरीक़ा, विनम्र बनना, साहसी बनना, नया रास्ता खोजना, वो रास्ता जो प्रामाणिक हो, जिसको आप तर्क के साथ मान सकें, और उसके बाद में ये विनम्रता भी कि अगर ये ठीक नहीं है तो झुक कर नई बात को सुनना, स्वीकार करना, मुझे लगता है ये चीज़ें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरू में प्रोफ़ेसर हैं और शुरुआती दिनों से ही फ़ाउण्डेशन से निकटता से जुड़े हुए हैं। आप पिछले पच्चीस वर्षों से शिक्षकों के पेशेवर विकास और व्यवस्थागत परिवर्तन के लिए काम कर रहे हैं।
सम्पर्क : hardy@azimpremjifoundation.org